**ओ३म्**

**‘स्वामी दयानन्द अपूर्व सिद्ध योगी व पूर्ण वैदिक ज्ञान से संपन्न महापुरुष थे’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महर्षि दयानन्द जी के समग्र जीवन पर दृष्टि डालने पर यह तथ्य सामने आता है कि वह एक सिद्ध योगी तथा आध्यात्मिक ज्ञान से सम्पन्न वेदज्ञ महात्मा और महापुरुष थे। अन्य अनेक गुण और विशेषातायें भी उनके जीवन में थी जो महाभारतकाल के बाद उत्पन्न हुए संसार के अन्य मनुष्यों में नहीं पायी जाती। वस्तुतः यह दोनों उपलब्धियां ही उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य बनी थीं। आरम्भ में तो उन्हें पता नहीं था कि जिस उद्देश्य के लिए वह अपना घर व माता-पिता का त्याग कर रहे हैं उसका परिणाम क्या होगा? उन्होंने सच्चे शिव संबंधी ज्ञान की प्राप्ति और मृत्यु पर विजय पाने को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। उन्हें इस बात का आभास था कि सच्चे योगियों से उनके मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं। इसलिए हम पाते हैं कि घर से चलकर वह विद्या प्राप्ति में निपुणता प्राप्त होने तक ज्ञानियों व योगियों की ही संगति में देश भर में सभी सम्भावित स्थानों पर खोज करते रहे। उनका यह गुण था कि अपने लक्ष्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित उन्हें जहां जिससे जितना भी ज्ञान मिलता था, उसे वह प्राप्त कर लेते थे और उससे आगे के लिए वह अन्य सम्भावित स्थानों की ओर चल पड़ते थे।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने जीवन के लक्ष्य की पूर्ति में सहायता के लिए शीघ्र की ब्रह्मचर्य की दीक्षा व उसके बाद संन्यास ले लिया था। उन्होंने अपने जीवन का पर्याप्त समय गुजरात के प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थों, मध्यप्रदेश के नर्मदा तट व नर्मदा के स्रोत अमरकण्टक, राजस्थान के आबू पर्वत सहित उत्तराखण्ड के वन व पर्वतों पर जाकर सिद्ध योगियों व ज्ञानियों की खोज में लगाया था। गुजरात की चाणोदकन्याली में उन्हें योगी ज्वालापुरी और शिवानन्द गिरी मिले जिनसे उन्हें योग के अनेक सू़क्ष्म रहस्यों का ज्ञान हुआ। उन्होंने इन योग प्रवीण गुरुओं के निर्देशन में योग का सफल अभ्यास भी किया था। इसके बाद अहमदाबाद व आबूपर्वत जाकर भी उन्होंने योगाभ्यास किया और यहां भी उन्हें योग शिक्षा के अनेक गुप्त स सूक्ष्म महत्वपूर्ण रहस्यों का ज्ञान हुआ। स्वामी दयानन्द जी ने अपने गृह पर रहकर 21 वर्ष की अवस्था तक अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अतः यात्रा में जहां कहीं उन्हें कोई ग्रन्थ मिलता था तो वह उसको प्राप्त कर उसका अध्ययन करते थे। ज्ञान के अनुसंधान के लिए योगियों व महात्माओं से मिलना और साहित्यिक शोध के प्रति उनकी बुद्धि बड़ी प्रबल थी। पुस्तकों में जो लिखा है वह सत्य और प्रमाणित है या नहीं, इसकी वह परीक्षा किया करते थे। उनके पास कुछ तन्त्र ग्रन्थ थे। उनमें शरीर के भीतर जिन चक्रों का वर्णन था, एक बार अवसर मिलने पर नदी में बह रहे शव को बाहर निकाल कर तथा अपने चाकू से उसे चीरकर, उसका पुस्तक के वर्णन से उन्होंने मिलान किया था। जब वह वर्णन सही नहीं पाया तो उन ग्रन्थों को भी उन्होंने उस शव के साथ बांध कर नदी में बहा दिया था। इससे सत्य की खोज के प्रति उनके दृण संकल्प के दर्शन होते हैं। इस पूरे वर्णन से स्वामी दयानन्द जी का योग में प्रवीण हो जाने और उसके प्रायः सभी रहस्यों को जीवन में प्राप्त कर लेने का तो अनुभव होता है परन्तु ज्ञान प्राप्ती की उनकी आगे की यात्रा करनी अभी बाकी थी। यहां हमें इस तथ्य के भी दर्शन हो रहे हैं कि कोई भी सफल योगी सांसारिक ज्ञान, विज्ञान व वेदों के ज्ञान से सम्पन्न नहीं हो जाता जैसा कि कई लोग दावा करते है कि योग में निष्णात हो जाने पर सभी ज्ञान योगी को स्वतः सुलभ हो जाते हैं और उसे ज्ञान प्राप्ति करना शेष नहीं रहता।

स्वामी दयानन्द जी में ज्ञान प्राप्ति की भी तीव्र अभिलाषा व इच्छा थी। इसकी प्राप्ति का स्थान भी वह बड़े ज्ञानी योगियों को ही मानते हैं। अतः योग में पूर्णता प्राप्त कर लेने पर भी उनकी ज्ञान की पिपासा को शान्त करने के प्रयत्न जारी रहे। इसके लिए वह गुजरात के धार्मिक वा तीर्थस्थलों, नर्मदा तट व उसके उद्गम तथा राजस्थान के आबू पर्वत की तो पूर्णता से छानबीन कर चुके थे, अब उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति के लिए उत्तराखण्ड के हरिद्वार, ऋषिकेश और वन पर्वतों के शिखरों सहित कन्दराओं व तीर्थ स्थानों में ज्ञानी योगियों के मिलने की सम्भावना थी। वह इस ओर बढ़े और अभीष्ट का अनुसंधान करने लगे। अनुसंधान करने पर यहां उन्हें भीषण कष्ट हुए परन्तु कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। इसके कुछ काल बाद सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से सारा देश किसी न किसी रूप में संघर्षरत रहा। इसके बात स्थिति कुछ सामान्य होने पर सन् 1860 में स्वामी दयानन्द जी मथुरा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी की पाठशाला में ज्ञान की प्राप्ति हेतु पहुंचते हैं। यहां स्वामी जी को अपने निवास, पुस्तकों के क्रयण एवं भोजन आदि की समस्याओं के निवारण में कुछ समय लगता है। इसके बाद उनका अध्ययन आरम्भ होकर 3 वर्ष तक चलता है। स्वामीजी गुरु विरजानन्द जी की शिक्षा से उस ज्ञान को प्राप्त करते हैं जिसकी उन्हें तीव्र अभिलाषा थी और जिसके लिए उन्होंने अपने माता-पिता व घर का त्याग किया था। गुरु दक्षिणा का अवसर आता है। स्वामी जी गुरु जी को प्रिय कुछ लौंग लेकर पहुंचते हैं। दोनों के बीच बातचीत होती है। गुरुजी स्वामी जी को मिथ्या अज्ञान व अन्धविश्वास दूर कर वैदिक ज्ञान का प्रकाश करने का आग्रह करते हैं। स्वामी दयानन्द जी भी अपने लिए इस कार्य को सर्वोत्तम व उचित पाते हैं। अतः गुरु विरजानन्द जी की प्रेरणा, परामर्श वा आज्ञा को स्वीकार कर उन्हें इस कार्य को करने का वचन देते हैं। हमें लगता है कि स्वामी जी यदि यह कार्य न करते तो उनकी योग्यता के अनुरुप उनके पास करने के लिए दूसरा कोई कार्य भी नहीं था। अभी तक स्वामी दयानन्द जी ने योग तथा आर्ष विद्या के क्षेत्र में जो ज्ञान की उपलब्धि की व अनुभव प्राप्त किये, उससे सारा संसार अपरिचित था। सन् 1863 में वह कार्य क्षेत्र में आते हैं और धीरे धीरे वह अन्धविश्वासों का निवारण और वेदों के प्रचार प्रसार करने में सफलताओं को प्राप्त करना आरम्भ कर देते हैं। इन कार्यों में पूर्णता तब दृष्टिगोचर होती है जब वह नवम्बर, 1869 में काशी में पूरी पौराणिक विद्वतमण्डली को मूर्तिपूजा को वेद शास्त्रानुकूल सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ करते हैं और अपने सिद्धान्त कि मूर्तिपूजा वेद व शास्त्र सम्मत नहीं है, सफल व विजयी होते हैं।

स्वामी दयानन्द जी और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द जी दोनों ही देश की धार्मिक व सामाजिक पतनावस्था से चिन्तित थे। दोनों ने ही इसके कारणों व समाधान पर विचार किया था। इसका कारण यह था कि अवैदिक, पौराणिक व मिथ्या ज्ञान तथा आपस की फूट के कारण देश की यह दुर्दशा हुई है। इस समस्या पर विजय पाने का एक ही उपाय था कि सत्य और असत्य के यथार्थ स्वरूप का प्रचार कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराया जाये। स्वामी जी ने गुरु विरजानन्द जी से ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति, धर्म व जीवन शैली के सम्बन्ध में वेदों में निहित सत्य ज्ञान को ही प्राप्त किया था। उन्होंने मथुरा में गुरूजी से विदा लेने के बाद अपने आपको इस महत्कार्य के लिए तैयार किया था। उनके पास सभी विषयों के सभी प्रकार के प्रश्नों के सत्य उत्तर थे। उनका अपना जीवन भी सत्य के ग्रहण साक्षात उदाहरण था। उन्होंने मनुस्मृति जैसे प्रमुख ग्रन्थ में विद्यमान लाभकारी सत्यासत्य की कसौटी पर कस कर वेदानुकूल भाग को भी प्राप्त किया था जिसका इससे पूर्व किसी ने इस प्रकार से अध्ययन नहीं किया था। उनके समय तक के विद्वान पूरी मनुस्मृति को या तो स्वीकार करने वाले थे या अस्वीकार करने वाले। परन्तु इसके सत्य व लोकहितकारी ज्ञान को स्वीकार व उसमें प्रक्षिप्त वेद विरुद्ध, असत्य व मिथ्या ज्ञान वाले अंश को त्यागने की दृष्टि रखने वाले विद्वान नहीं थे। इस दृष्टि को रखने वाले स्वामी दयानन्द पहले विद्वान थे। स्वामी दयानन्द जी ने अपने समग्र ज्ञान के आधार पर देश का भ्रमण आरम्भ कर दिया। पूना पहुंच कर उन्होंने प्रवचनों से वहां के प्रबुद्ध समाज को अपनी बातों का लोहा मनवाया। मुम्बई में उनके प्रवचनों से लोग प्रभावित हुए। उन्हें सन् 1874 में वैदिक विचारों का वर्तमान व भविष्य काल में तथा उनके सम्पर्क में न आने लोगों तक उनकी सभी बातें पहुंच जायें वा पहुंचती रहे, इसका एक ग्रन्थ तैयार करने का प्रस्ताव मिला जिसे उन्होंने विश्व का अनूठा ग्रन्थ **‘‘सत्यार्थप्रकाश”** लिख कर पूरा किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुम्बई के प्रबुद्ध लोगों ने उन्हें एक संगठन बनाने का सुझाव दिया। उसी का परिणाम 10 अप्रैल, 1875 को आर्यसमाज की स्थापना था। इसके बाद व कुछ पूर्व उन्होंने पंचमहायज्ञ विधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय, वेद भाष्य सहित अनेक ग्रन्थों का प्रणयन भी किया जिसका उद्देश्य सत्य का प्रचार करना व मिथ्या ज्ञान वा अन्धविश्वासों को समाप्त करना था। स्वामी जी को अपने इस कार्य में निरन्तर सफलतायें प्राप्त होती आ रही थी। अब उनका प्रभाव व सम्पर्क वर्तमान के महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि अनेक स्थानों में हो चुका था। इन सभी स्थानों पर आर्यसमाज स्थापित हो रहे थे। मुख्यतः पौराणिक लोग आर्यमत को स्वीकार कर रहे थे और अन्य मतों के प्रमुख लोग भी वैदिक धर्म से प्रभावित हुए थे। स्वामी जी ने आर्य वैदिक मत के सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए उपदेश व प्रवचनों सहित वार्तालाप व शास्त्रार्थों का भी सहारा लिया था। वह शास्त्रार्थों के अपराजेय व विजित योद्धा थे। महर्षि दयानन्द ने अपने कार्यों व प्रयासों से वैदिक धर्म को संसार का प्रथम व उत्कृष्ट सत्य, तर्क व विज्ञान की कसौटी पर खरा एकमात्र धर्म बना दिया था जिससे सभी मतों के आचार्यों में अपने निजी स्वार्थों के कारण असुखद स्थिति अनुभव की जाने लगी थी और वह उनके शत्रु बन रहे थे।

महर्षि दयानन्द ने वेदों के मन्त्रों में छिपे रहस्यों को खोला जिस कारण उन्हें महर्षि के नाम वा पदवी से सम्बोधित किया जाता है। उन्होंने अवतारवाद, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, जन्मना जातिवाद, बाल विवाह, सामाजिक असमानता, स्त्री व शूद्रों का वैदिक शिक्षा के अनाधिकार सहित सभी धार्मिक व सामाजिक अन्धविश्वासों का खण्डन किया और सच्चिदानन्द निराकार सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी ईश्वर की वैदिक रीति से सन्ध्योपासना, गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वैदिक वर्ण व्यवस्था, खगोल ज्योतिष, गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार पूर्ण युवावस्था में विवाह, अनिवार्य व निःशुल्क गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था व वैदिक सुरीतियों का समर्थन किया। देश की आजादी में उनका व उनके आर्यसमाज का सर्वोपरि योगदान है। वह अपूर्व देशभक्त व मानवता के सच्चे पुजारी थे। संसार के सभी मनुष्यों की सांसारिक व आध्यात्मिक उन्नति ही उनको अभीष्ट थी। उन्होंने अपना कोई नया मत व सम्प्रदाय नहीं चलाया अपितु ईश्वर द्वारा सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को दिये गये वेद ज्ञान का ही प्रचार कर संसार से अज्ञानता, असमानता व भेदभावों को दूर करने का प्रयास किया। वह वेदाज्ञा **‘कृण्वन्तो विश्वमार्यम्’** में विश्वास रखते थे और वैदिक धर्म से बिछुड़े हुए भाई-बहिनों को निष्पक्ष भाव से वैदिक धर्म के वट वृक्ष के नीचे लाने के समर्थक थे। वस्तुतः उन्होंने एक ऐसे विश्व का स्वप्न संजोया था जिसमें किसी के प्रति किसी प्रकार का अन्याय, भेदभाव और शोषण न हो और सब वैदिक ज्ञान से युक्त शिक्षित, विद्वान, विदुषी, निरोगी, स्वस्थ व बलवान हों। वह संसार से अशान्ति व दुःखों को समूल मिटाना चाहते थे। उनके शिष्यों पर उनके स्वप्नों को पूरा करने का भार है परन्तु उन सभी को कर्तव्यबोध भी है?, कहा नहीं जा सकता। आत्म चिन्तन और आर्यसमाज के नियम कि मनुष्य को सार्वजनिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें, यह और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग ही आर्यसमाज का उन्नति का मार्ग है। हम सबको अपना आत्मनिरीक्षण करते हुए इसी मार्ग पर चलना चाहिये।

महर्षि दयानन्द जी की दो विशेषताओं, उनके सिद्ध योगी और वेद ज्ञान सम्पन्न होने तथा इन विशेषताओं का उपयोग कर संसार के कल्याण की भावना से वेद प्रचार करने का हमने लेख में वर्णन किया है। उनरके बाद उनके समान योगी और वेदों का विद्वान उत्पन्न नहीं हुआ। यदि होता तो विश्व को आशातीत लाभ होता। आशा है कि पाठक इस लेख को पसन्द करेंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**